सत्यानुसरण

सूचना

परमप्रेममय श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी के अन्यतम प्रिय भक्त थे अतुलचन्द्र भट्टाचार्य! कर्म जीवन पबना से दूर लिये जा रहा था उन्हें! विरह–विच्छेद कातर भक्त ने प्रेमाश्रु धारा लिये श्रीहस्तलिखित अमृत–निर्देश के लिये प्रार्थना की जिससे वे निरन्तर दिव्यभावधारा से अनुप्राणित रह सकें। बाईस वर्ष की उम्र में श्रीश्रीठाकुर ने एक रात में अपनी अमृत निष्यन्दी स्वतः उत्सारी वाणी लिपिबद्ध की। आखिर भक्त की प्रार्थना ने पृथ्वी पर मन्दाकिनी की पुण्य–धारा बहा दी, जो केवल भक्त को ही नहीं अपितु हर मनुष्य को युग–युग में संजीवित किये रहेगी।

सत्यानुसरण

अर्थ, मान, यश इत्यादि पाने की आशा में मुझे ठाकुर बनाकर भक्त मत बनो, सावधान होओ–ठगे जाओगे; तुम्हारा ठाकुरत्व न जागने पर कोई तुम्हारा केन्द्र भी नहीं, ठाकुर भी नहीं– धोखा देकर धोखे में पड़ोगे।

-- श्रीश्रीठाकुर

भारत की अवनति (Degeneration) तभी से आरम्भ हुई जब से भारतवासियों के लिये अमूर्त्त भगवान असीम हो उठें – ऋषियों को छोड़ कर ऋषिवाद की उपासना आरम्भ हुई। भारत! यदि भविष्यत्–कल्याण का आह्वान करना चाहते हो, तो सम्प्रदायगत विरोध को भूल कर जगत के पूर्व–पूर्व गुरुओं के प्रति श्रद्धासम्पन्न होओ– और अपने मूर्त्त एवं जीवन्त गुरु वा भगवान में आसक्त (attached) होओ, – और उन्हें ही स्वीकार करो– जो उनसे प्रेम करते हैं। कारण, पूर्ववर्त्ती को अधिकार करके ही परवर्ती का आविर्भाव होता है।

सत्यानुसरण

दुर्बलता के विरूद्ध युद्ध

सर्वप्रथम हमें दुर्बलता के विरूद्ध युद्ध करना होगा। साहसी बनना होगा, वीर बनना होगा। पाप की ज्वलन्त प्रतिमूर्ति है वह दुर्बलता। भगाओ, जितना शीध्र सम्भव हो, रक्तशोषणकारी अवसाद-उत्पादक Vampire को। स्मरण करो तुम परमपिता की सन्तान हो। पहले साहसी बनो, अकपट बनो, तभी समझा जायगा, धर्मराज्य में प्रवेश करने का तुम्हारा अधिकार हुआ है।

तनिक-सी दुर्बलता रहने पर भी तुम ठीक-ठीक अकपट नहीं हो सकोगे और जब तक तुम्हारे मन-मुख एक नहीं होते तब तक तुम्हारे अन्दर मलिनता दूर नहीं होगी।

मन-मुख एक होने पर भीतर मलिनता नहीं जम सकती - गुप्त मैल भाषा के जरिये निकल पड़ते हैं। पाप उसके अन्दर जाकर घर नहीं बना सकता!

हट जाना दुर्बलता नहीं है बल्कि चेष्टा न करना ही है दुर्बलता। कुछ करने के लिये प्राणपण से चेष्टा करने पर भी यदि तुम विफलमनोरथ होते हो तो क्षति नहीं! तुम छोड़ो नहीं, वह अम्लान चेष्टा ही तुम्हें मुक्ति की ओर ले जायगी।

दुर्बल मन चिरकाल ही सन्दिग्ध रहता है- वह कभी भी निर्भर नहीं कर सकता। विश्वास खो बैठता है -इसलिए प्रायः रुग्न, कुटिल, इन्द्रियपरवश होता है। उसके लिये सारा जीवन ज्वालामय है। अन्त में अशांति में सुख-दुःख डूब जाता है,- क्या सुख है, क्या दुःख है, नहीं कह सकता; पूछे जाने पर कहता है, 'अच्छा हूँ', पर रहती है अशान्ति; अवसाद से जीवन क्षय होता रहता है।

दुर्बल हृदय में प्रेम-भक्ति का स्थान नहीं। दूसरे की दुर्दशा देख, दूसरे की व्यथा देख, दूसरे की मृत्यु देख अपनी दुर्दशा, व्यथा या मृत्यु की आशंका कर भग्न हो पड़ना, निराश होना या रो कर आकुल होना-ये सभी दुर्बलतायें हैं। जो शक्तिमान हैं, वे चाहे जो भी करें, उनकी नजर रहती है निराकरण की ओर, -जिससे उन सभी अवस्थाओं में कोई विध्वस्त न हो, प्रेम के साथ उसके ही उपाय की चिन्ता करना-बुद्धदेव को जैसा हुआ था। वही है सबल हृदय का दृष्टांत।

तुम मत कहो कि तुम भीरु हो, मत कहो कि तुम कापुरुष हो, मत कहो कि तुम दुराशय हो! पिता की ओर देखो, आवेग सहित बोलो- हे पिता, मैं तुम्हारी सन्तान हूँ, मुझमें अब जड़ता नहीं, दुर्बलता नहीं, मैं अब कापुरुष नहीं, तुम्हें भूलकर मैं अब नरक की ओर नहीं दौडूँगा और तुम्हारी ज्योति की ओर पीठ कर 'अन्धकार-अन्धकार' कह चीत्कार नहीं करुँगा।'

अनुताप

अनुताप करो; किन्तु स्मरण रखो जैसे पुनः अनुतप्त न होना पड़े!

जभी अपने कुकर्म के लिये तुम अनुतप्त होगे, तभी परमपिता तुम्हें क्षमा करेंगे और क्षमा होने पर ही समझोगे, तुम्हारे हृदय में पवित्र सांत्वना आ रही है और तभी तुम विनीत, शान्त और आनन्दित होगे।

जो अनुतप्त होकर भी पुनः उसी प्रकार के दुष्कर्म में रत होता है, समझना कि वह शीघ्र ही अत्यन्त दुर्गति में पतित होगा।

सिर्फ मौखिक अनुताप तो अनुताप है ही नहीं, बल्कि वह अन्तर में अनुताप आने का और भी बाधक है। प्रकृत अनुताप आने पर उसके सभी लक्षण ही थोड़ा-बहुत प्रकाश पाते हैं।

सत्यानुसरण

कामिनी-कांचन

जगत में मनुष्य जो कुछ दुःख पाता है उनमें अधिकांश ही कामिनी-कांचन की आसक्ति से आते हैं, इन दोनों से जितनी दूर रहा जाय उतना ही मंगल।

भगवान श्रीश्रीरामकृष्णदेव ने सभी को विशेषकर कहा है, कामिनी-कांचन से दूर-दूर-बहुत दूर रहो।

कामिनी से काम हटा देने से ही ये माँ हो पड़ती हैं। विष अमृत हो जाता है। और माँ, माँ ही है, कामिनी नहीं।

माँ शब्द के अन्त में 'गी' जोड़कर सोचने से ही सर्वनाश। सावधान! माँ को मागी सोच न मरो।

प्रत्येक की माँ ही है जगज्जननी! प्रत्येक नारी ही है अपनी माँ का विभिन्न रूप, इस प्रकार सोचना चाहिये।

मातृभाव हृदय में प्रतिष्ठित हुए बिना स्त्रियों को स्पर्श नहीं करना चाहिये-जितनी दूर रहा जाये उतना ही अच्छा; यहाँ तक कि मुखदर्शन तक नहीं करना और भी अच्छा है।

मेरे काम-क्रोधादि नहीं गये, नहीं गये-कहकर चिल्लाने से वे कभी नहीं जाते। ऐसा कर्म, ऐसी चिन्ता का अभ्यास कर लेना चाहिये जिसमें काम-क्रोधादि की गन्ध भी नहीं रहे-मन जिससे उन सबको भूल जाये।

मन में काम-क्रोधादि का भाव नहीं आने से वे कैसे प्रकाश पायेंगे? उपाय है-उच्चतर उदार भाव में निमज्जित रहना।

सृष्टितत्व, गणितविद्या, रसायनशास्त्र इत्यादि की आलोचना से काम-रिपु का दमन होता है।

कामिनी-कान्चन सम्बन्धी जिस किसी प्रकार की आलोचना ही उनमें आसक्ति ला दे सकती है। उन सभी आलोचनाओं से जितनी दूर रहा जाये उतना ही अच्छा।

दुःख

संकोच ही दुःख है और प्रसारण ही है सुख। जिससे हृदय में दुर्बलता आती है, भय आता है-उसमें ही आनन्द की कमी है-और वही है दुःख।

चाह की अप्राप्ति ही है दुःख! कुछ भी न चाहो। सभी अवस्थाओं में राजी रहो, दुःख तुम्हारा क्या करेगा?

दुःख किसी का प्रकृतिगत नहीं, इच्छा करने से ही उसे भगा दिया जा सकता है।

परमपिता से प्रार्थना करो- 'तुम्हारी इच्छा ही है मंगल, मैं नहीं जानता, कैसे मेरा मंगल होगा। मेरे भीतर तुम्हारी इच्छा ही पूर्ण हो।' और, उसके लिये तुम राजी रहो- आनन्द में रहोगे, दुःख तुम्हें स्पर्श न करेगा।

किसी के दुःख का कारण न बनो, कोई तुम्हारे दुःख का कारण न बनेगा।

दुःख भी एक प्रकार का भाव है, सुख भी एक प्रकार का भाव है। अभाव का या चाह का भाव ही है दुःख। तुम दुनियाँ के लिये हजार करके भी दुःख को दूर नहीं कर सकते-जब तक तुम हृदय से उस अभाव के भाव को निकाल नहीं लेते। और धर्म ही उसे कर सकता है।

सत्यानुसरण

कपटता

यदि साधना में उन्नति लाभ करना चाहते हो तो कपटता त्यागो।

कपट व्यक्ति दूसरे से सुख्याति की आशा में अपने आप से प्रवंचना करता है; अल्प विश्वास के कारण दूसरे के प्रकृत दान से भी प्रवंचित होता है।

तुम लाख गल्प करो, किन्तु प्रकृत उन्नति नहीं होने पर तुम प्रकृत आनन्द कभी भी लाभ नहीं कर सकते।

कपटाशय के मुख की बात के साथ अन्तर का भाव विकसित नहीं होता, इसीसे आनन्द की बात में भी मुख पर निरसता के चिन्ह दृष्ट होते हैं; कारण, मुँह खोलने से होता ही क्या है, हृदय में भाव की स्फूर्ति नहीं होती।

अमृतमय जल कपटी के लिये तिक्त लवणमय होता है। तट पर जाकर भी उसकी तृष्णा निवारित नहीं होती।

सरल व्यक्ति उर्द्धदृष्टि सम्पन्न चातक के समान होता है। कपटी व्यक्ति निम्नदृष्टिसम्पन्न गृद्ध के समान। छोटा होओ, किन्तु लक्ष्य उच्च हो; बड़ा एवं उच्च होकर निम्नदृष्टिसम्पन्न गृद्ध के समान होने से लाभ ही क्या है?

कपटी मत बनो, अपने का न ठगो और दूसरे का भी न ठगो।

दोष-दृष्टि

यह खूब ही सत्य बात है कि मन में जभी दूसरे के दोष देखने की प्रवृत्ति आती है तभी वे दोष तुम्हारे अन्दर आकर घर बना लेते हैं। तभी बिना काल विलम्ब किये उस पाप प्रवृत्ति को तोड़-मरोड़ एवं झाड़-बुहार कर साफ कर देने में निस्तार है, नहीं तो सब नष्ट हो जायगा।

तुम्हारी नजर यदि दूसरे का केवल 'कु'-ही देखे तो तुम कभी भी किसी को प्यार नहीं कर सकते। जो सत् नहीं देख सकता वह कभी भी सत् नहीं होता।

तुम्हारा मन जितना निर्मल होगा, तुम्हारी आँखें उतनी ही निर्मल होगी और जगत् तुम्हारे सम्मुख निर्मल होकर प्रकट होगा।

तुम चाहे जो भी क्यों न देखो, अन्तर सहित सबसे पहले उसकी अच्छाई देखने की चेष्टा करो और इस अभ्यास को मज्जागत कर लो।

तुम्हारी भाषा यदि कुत्सा-कलंक-जड़ित ही हो, दूसरे की सुख्याति नहीं कर सके, तो वह जिसमें किसी के प्रति कोई भी मतामत प्रकाश न करे। मन ही मन तुम अपने स्वभाव से घृणा करने की चेष्टा करो एवं भविष्य में कुत्सा-नरक त्यागने के लिये दृढ़प्रतिज्ञ बनो।

परनिन्दा करना ही है दूसरे के दोष बटोर कर स्वयं कलंकित होना; और दूसरे की सुख्याति करने के अभ्यास से अपना स्वभाव अज्ञातभाव से अच्छा हो जाता है।

लेकिन किसी स्वार्थ-बुद्धि से दूसरे की सुख्याति नहीं करनी चाहिये। वह तो खुशामद है। ऐसे क्षेत्र में मन-मुख प्रायः एक नहीं रहते। यह बहुत ही खराब है, और इससे अपने स्वाधीन मत-प्रकाश की शक्ति खो जाती है।

सत्यानुसरण

धर्म

जिस पर सबकुछ आधारित है वही है धर्म, और वे ही हैं परम पुरुष।

धर्म कभी अनेक नहीं होता, धर्म एक है और उसका कोई प्रकार नहीं।

मत अनेक हो सकते हैं, यहाँ तक कि जितने मनुष्य हैं उतने मत हो सकते हैं, किन्तु इससे धर्म अनेक नहीं हो सकता।

मेरे विचार से हिन्दू धर्म, मुसलमान धर्म, ईसाई धर्म, बौद्ध धर्म इत्यादि बातें भूल हैं बल्कि वे सभी मत हैं।

किसी भी मत के साथ किसी मत का प्रकृत रूप में कोई विरोध नहीं, भाव की विभिन्नता, प्रकार-भेद हैं- एक का ही नाना प्रकार से एक ही तरह का अनुभव है।

सभी मत ही हैं साधना विस्तार के लिये, पर वे अनेक प्रकार के हो सकते हैं, और जितने विस्तार में जो होता है वही है अनुभूति, ज्ञान। इसीलिये धर्म है अनुभूति पर।

ज्ञानाभिमान

यदि मंगल चाहते हो तो ज्ञानाभिमान छोड़ो, सभी की बातें सुनो और वही करो जो तुम्हारे हृदय के विस्तार में सहायता करे!

ज्ञानाभिमान ज्ञान का जितना अन्तराय (बाधक) है उतना दूसरा रिपु नहीं।

यदि शिक्षा देना चाहते हो तो कभी भी शिक्षक बनना मत चाहो। मैं शिक्षक हूँ, यह अहंकार ही किसी को सीखने नहीं देता।

अहं को जितना दूर रखोगे तुम्हारे ज्ञान या दर्शन की दूरी उतनी ही विस्तृत होगी।

अहं जब गल जाता है, जीव तभी सर्वगुणसम्पन्न निर्गुण हो जाता है।

सद्‌गुरु की परीक्षा

यदि परीक्षक बनकर अहंकार सहित सद्‌गुरु अथवा प्रेमी साधुगुरु की परीक्षा करने जाओगे तो तुम उनमें अपने को ही देखोगे, ठगे जाओगे।

सद्‌गुरु की परीक्षा करने के लिये उनके निकट संकीर्ण-संस्कारविहीन हो प्रेम का हृदय लेकर, दीन एवं जहाँ तक सम्भव हो निरहंकार होकर जाने से उनकी दया से कोई सन्तुष्ट हो सकता है।

उन्हें अहं की कसौटी पर कसा नहीं जाता, किन्तु वे प्रकृत दीनतारूपी भेड़े के सींग पर खण्ड-विखण्ड हो जाते हैं।

हीरा जिस तरह कोयला इत्यादि गन्दी चीजों में रहता है, उत्तम रूप से परिष्कार किये बिना उसकी ज्योति नहीं निकलती, वे भी उसी प्रकार संसार में अति साधारण जीव की तरह रहते हैं, केवल प्रेम के प्रक्षालन से ही उनकी दीप्ति से जगत् उद्‌भासित होता है। प्रेमी ही उन्हें धर सकता है। प्रेमी का संग करो, सत्संग करो, वे स्वयं प्रकट होंगे।

अहंकारी की परीक्षा अहंकारी ही कर सकता है। गलित-अहं को वह कैसे जान सकता है? उसके लिये एक किंभूतकिमाकार (अद्‌भूत) लगेगा-जिस तरह बज्रमूर्ख के सामने महापण्डित।

सत्यानुसरण

स्वमत प्रकाश

सत्यदर्शी का आश्रय लेकर स्वाधीन भाव से सोचो एवं विनय सहित स्वाधीन मत प्रकाश करो। पुस्तक पढ़कर पुस्तक मत बन जाओ, उसके essence (सार) को मज्जागत करने की चेष्टा करो। Pull the husk to draw the seed (बीज प्राप्त करने के लिये भूसी को अलग करो)।

ऊपर-ऊपर देखकर ही किसी चीज को न छोड़ो या किसी प्रकार का मत प्रकाश न करो। किसी चीज का शेष देखे बिना उसके सम्बन्ध में ज्ञान ही नहीं होता है और बिना जाने तुम उसके विषय में क्या मत प्रकाश करोगे?

जो कुछ क्यों न करो, उसके अन्दर सत्य देखने की चेष्टा करो। सत्य देखने का अर्थ ही है उसके आदि-अन्त को जानना और वही है ज्ञान।

जो तुम नहीं जानते हो, ऐसे विषय में लोगों को उपदेश देने मत जाओ।

जिम्मेदारी

अपना दोष जानकर भी यदि तुम उसे त्याग नहीं सकते तो किसी भी तरह उसका समर्थन कर दूसरे का सर्वनाश न करो।

तुम यदि सत् बनो, तुम्हारे देखा-देखी हजार-हजार लोग सत् हो जायेंगे। और यदि असत् बनो, तुम्हारी दुर्दशा में समवेदना प्रकाश करनेवाला कोई भी नहीं रहेगा; कारण, असत् होकर तुमने अपने चतुर्दिक को असत् बना डाला है।

तुम ठीक-ठीक समझ लो कि तुम अपने, अपने परिवार के, दस और देश के वर्त्तमान और भविष्य के लिये उत्तरदायी हो।

नाम-यश की आशा में कोई काम करने जाना ठीक नहीं। किन्तु कोई भी काम निःस्वार्थ भाव से करने पर ही कार्य अनुरूप नाम-यश तुम्हारी सेवा करेंगे ही।

अपने लिये जो भी किया जाये, वही है सकाम और दूसरे के लिये जो किया जाये वही है निष्काम। किसी के लिये कुछ नहीं चाहने को ही निष्काम कहते हैं-केवल ऐसी बात नहीं है।

दे दो, अपने लिये कुछ मत चाहो, देखोगे, सभी तुम्हारे होते जा रहे हैं।

सहायता

तुम दूसरे से जैसा पाने की इच्छा रखते हो, दूसरे को वैसे ही देने की चेष्टा करो-ऐसा समझ का चलना ही यथेष्ट है-स्वयं ही सभी तुम्हें पसन्द करेंगे, प्यार करेंगे।

स्वयं ठीक रहकर सभी को सत् भाव से खुश करने की चेष्टा करो, देखोगे, सभी तुम्हें खुश करने की चेष्टा कर रहे हैं। सावधान, निजत्व खोकर किसी को खुश करने नहीं जाओ अन्यथा तुम्हारी दुर्गति की सीमा न रहेगी।

भाग्य

काम करते जाओ, किन्तु आबद्ध न होना। यदि विषय के परिवर्तन से तुम्हारे हृदय में परिवर्तन आ रहा है समझ सको और वह परिवर्तन तुम्हारे लिये वांछनीय नहीं है, तो ठीक जानो तुम आबद्ध हुए हो।

सत्यानुसरण

किसी प्रकार के संस्कार में ही आबद्ध मत रहो, एकमात्र परमपुरूष के संस्कार को छोड़कर और सभी बन्धन हैं।

तुम्हारे दर्शन की, ज्ञान की दूरी जितनी है, अदृष्ट (भाग्य) ठीक उसके आगे है; देख नहीं पाते हो, जान नहीं पाते हो, इसीलिए अदृष्ट है।

अपने शैतान अहंकारी अहमक ''मैं'' को निकाल बाहर करो; परमपिता की इच्छा पर तुम चलो, अदृष्ट कुछ भी नहीं कर सकेगा। परमपिता की इच्छा ही है अदृष्ट।

अपनी सभी अवस्थाओं में उनकी मंगल-इच्छा समझने की चेष्टा करो। देखना, कातर नहीं होगे, वरन् हृदय में सबलता आयेगी, दुःख में भी आनन्द पाओगे।

काम करते जाओ, अदृष्ट सोचकर हताश मत हो जाओ; आलसी मत बनो, जैसा काम करोगे तुम्हारे अदृष्ट वैसे ही बनकर दृष्ट होंगे। सत्कर्मी का कभी भी अकल्याण नहीं होता। चाहे एक दिन पहले या पीछे।

परमपिता की ओर देखकर काम करते जाओ। उनकी इच्छा ही है अदृष्ट; उसे छोड़कर और एक अदृष्ट-फदृष्ट बनाकर बेवकूफ बनकर बैठे मत रहो। बहुत-से लोग अदृष्ट में नहीं हैं, यह सोचकर पतवार छोड़कर बैठे रहते हैं, अपिच निर्भरता भी नहीं, अन्त में सारा जीवन दुर्दशा में काटते हैं, यह सब बेवकूफी है।

तुम्हारे 'मैंपन' जाते ही अदृष्ट खत्म हुआ, दर्शन भी नहीं, अदृष्ट भी नहीं।

करणीय

आगे बढ़ो, किन्तु माप कर देखने न जाओ कि कितनी दूर बढ़े हो; ऐसा करने से पुनः पीछे रह जाओगे।

अनुभव करो, किन्तु अभिभूत मत हो पड़ो, अन्यथा चल नहीं पाओगे। यदि अभिभूत होना है तो ईश्वरप्रेम में होओ।

यथाशक्ति सेवा करो, किन्तु सावधान, सेवा लेने की जिसमें इच्छा न जगे।

अनुरोध करो, किन्तु हुक्म करने मत जाओ।

कभी भी निन्दा न करो, किन्तु असत्य को प्रश्रय मत दो।

धीर बनो, किन्तु आलसी, दीर्घसूत्री मत बनो।

क्षिप्र बनो, किन्तु अधीर होकर विरक्ति को बुलाकर सब कुछ नष्ट मत कर दो।

वीर बनो, किन्तु हिंसक होकर बाघ-भालू जैसा न बन जाओ।

स्थिरप्रतिज्ञ होओ, जिद्दी मत बनो।

तुम स्वयं सहन करो, किन्तु जो नहीं कर सकता है उसकी सहायता करो, घृणा मत करो, सहानुभूति दिखलाओ, साहस दो।

स्वयं अपनी प्रशंसा करने में कृपण बनो, किन्तु दूसरे के समय दाता बनो।

जिस क्रुद्ध हुए हो, पहले उसे आलिंगन करो, अपने घर पर भोजन के लिए निमंत्रण दो, डालि भेजो एवं हृदय खोलकर जब तक बातचीत नहीं करते तब तक अनुताप सहित उसके मंगल के लिए परमपिता से

प्रार्थना करो; क्योंकि विद्वेष आते ही क्रमशः तुम संकीर्ण हो जाओगे और संकीर्णता ही पाप है।

यदि कोई तुम पर कभी अन्याय करे, और नितान्त ही उसका प्रतिशोध लेना हो तो तुम उसके साथ ऐसा व्यवहार करो जिससे वह अनुतप्त हो; ऐसा प्रतिशोध और नहीं है–अनुताप है तुषानल। उसमें दोनों का मंगल है।

बन्धुत्व खारिज न करो अन्यथा सजा में संवेदना एंव सांत्वना नहीं पाओगे।

तुम्हारा बन्धु अगर असत् भी हो, उसे न त्यागो वरन् प्रयोजन होने पर उसका संग बन्द करो, किन्तु अन्तर में श्रद्धा रखकर विपत्ति–आपत्ति में कायमनोवाक्य से सहायता करो और अनुतप्त होने पर आलिंगन करो।

तुम्हारा बन्धु अगर कुपथ पर जाता है और तुम यदि उसे लौटाने की चेष्टा न करो या त्याग करो तो उसकी सजा तुम्हें भी नहीं छोड़ेगी।

बन्धु की कुत्सा न रटो या किसी भी तरह दूसरे के निकट निन्दा न करो; किन्तु उसका अर्थ यह नहीं कि उसके निकट उसकी किसी बुराई को प्रश्रय दो।

बन्धु के निकट उद्धत न होओ किन्तु प्रेम के साथ अभिमान से उस पर शासन करो।

बन्धु से कुछ प्रत्याशा न रखो किन्तु जो पाओ प्रेम सहित ग्रहण करो। कुछ दो तो पाने की आशा न रखो, किन्तु कुछ पाने पर देने की चेष्टा करो।

व्यथा

जितने दिनों तक तुम्हारे शरीर और मन में व्यथा लगती है उतने दिनों तक तुम चींटी की भी व्यथा के निराकरण की ओर चेष्टा रखो और ऐसा यदि नहीं करते हो तो तुमसे हीन और कौन है?

अपने गाल पर थप्पड़ लगने पर यदि कह सको, कौन किसको मारता है, तभी दूसरे के समय बोलो–अच्छा ही है। खबरदार, स्वयं यदि ऐसा नहीं सोच सको तो दूसरे के समय बोलने मत जाओ!

यदि अपने कष्ट के समय संसारी बनते हो तो दूसरे के समय ब्रह्मज्ञानी मत बनो। वरन् अपने दुःख के समय ब्रह्मज्ञानी बनो और दूसरे के समय संसारी, ऐसा कृत्रिम भाव भी अच्छा है।

यदि मनुष्य हो तो अपने दुःख में हँसो और दूसरे के दुःख में रोओ।

अपनी मृत्यु यदि नापसन्द करते हो तो कभी भी किसी को 'मरो' न कहो।

सत् स्वभाव

हँसो, किन्तु विद्रुप में नहीं।

रोओ, किन्तु आसक्ति में नहीं, प्यार में, प्रेम में।

बोलो, किन्तु आत्मप्रशंसा या ख्याति विस्तार के लिये नहीं।

तुम्हारे चरित्र के किसी भी उदाहरण से यदि किसी का मंगल हो तो उसको गुप्त मत रखो।

तुम्हारा सत्स्वभाव कर्म में फूट निकले, किन्तु अपनी भाषा में व्यक्त न हो, नजर रखो।

सत् में अपनी आसक्ति संलग्न करो, अज्ञात भाव से सत् बनोगे। तुम अपने भाव से सत्–चिन्ता में

निमग्न होओ, तुम्हारे अनुयायी भाव स्वयं फूट निकलेंगे।

असत्-चिन्ता जिस प्रकार दृष्टि में, वाक्य में, आचरण में, व्यवहार इत्यादि में व्यक्त हो जाती है, सत्-चिन्ता भी उसी प्रकार व्यक्त हो जाती है।

स्पष्टवादी

स्पष्टवादी होओ, किन्तु मिष्टभाषी बनो।

बोलने में विवेचना करो, किन्तु बोलकर विमुख मत होओ।

यदि भूल बोल चुके हो, सावधान होओ, भूल नही करो।

सत्य बोलो, किन्तु संहार न लाओ।

सत् बात बोलना अच्छा है, किन्तु सोचना, अनुभव करना और भी अच्छा है।

असत् बात बोलने की अपेक्षा सत् बात बोलना अच्छा है निश्चय, किन्तु बोलने के साथ कार्य करना एवं अनुभव न रहा तो क्या हुआ?- बेहला, वीणा जिस तरह वादक के अनुग्रह से बजती अच्छी है, किन्तु वे स्वयं कुछ अनुभव नहीं कर सकती।

जो अनुभूति की खूब गपें मारता है पर उसके लक्षण प्रकाशित नहीं होते, उसकी सभी गपें कल्पनामात्र या आडम्बर हैं।

जितना डुबोगे उतना बेमालूम होओगे।

जैसे अनार पकते ही फट जाता है, तुम्हारे अन्तर में सत्भाव परिपक्व होते ही स्वयं फट जायेगा-तुम्हें मुँह से उसे व्यक्त करना न होगा।

हृदय में प्रेम

जो ख्याल विवेक का अनुचर है उसी का अनुसरण करो, मंगल के अधिकारी बनोगे।

विस्तार में अस्तित्व खो दो, किन्तु बूझो नहीं। विस्तार ही है जीवन, विस्तार ही है प्रेम।

जो कर्म मन का प्रसारण ले आता है वही सुकर्म है और जिससे मन में संस्कार, कट्टरता इत्यादि आते हैं, फलस्वरूप, जिससे मन संकीर्ण होता है वही कुकर्म है।

जिस कर्म को मनुष्य के सामने कहने से मुँह पर कालिमा लगती है, उसे करने मत जाओ। जहाँ गोपनता है, घृणा-लज्जा-भय से वहीं दुर्बलता है, वहीं है पाप।

जो साधना करने से हृदय में प्रेम आता है, वही करो और जिससे क्रूरता, कठोरता, हिंसा आती है, वह फिलहाल लाभजनक हो तो भी उसके नजदीक मत जाओ।

तुमने यदि ऐसी शक्ति प्राप्त कर ली है जिससे चन्द्र-सूर्य को कक्षच्यूत कर सकते हो, पृथ्वी का तोड़कर टुकड़ा-टुकड़ा कर सकते हो या सभी को ऐश्वर्यशाली कर दे सकते हो, किन्तु यदि हृदय में प्रेम नहीं रहे तो तुम्हारा कुछ हुआ ही नहीं।

चाह

एक की चाह करते समय दस की चाह मत कर बैठो, एक का ही जिससे चरम हो वही करो, सब कुछ

पाओगे।

जीवन को जिस भाव से बलि दोगे, निश्चय उस प्रकार का जीवन लाभ करोगे।

जो कोई प्रेम के लिए जीवन दान करता है वह प्रेम का जीवन लाभ करता है।

उद्देश्य में अनुप्राणित होओ और प्रशान्तचित्त से समस्त सहन करो, तभी तुम्हारा उद्देश्य सफल होगा।

हृदय दो, कभी भी हटना नहीं पड़ेगा।

निर्भर करो, कभी भी भय नहीं पाओगे।

विश्वास करो, अन्तर के अधिकारी बनोगे।

साहस दो, किन्तु शंका जगा देने की चेष्टा न करो।

धैर्य धरो, विपद कट जायगी।

अहंकार न करो, जगत में हीन होकर रहना न पड़ेगा।

किसी के द्वारा दोषी बनाने के पहले ही कातर भाव से अपना दोष स्वीकार करो, मुक्तकलंक होगे, जगत् के स्नेह के पात्र बनोगे।

संयत होओ, किन्तु निर्भीक बनो।

सरल बनो, किन्तु बेवकूफ न होओ।

विनीत होओ, उसका अर्थ यह नहीं कि दुर्बल-हृदय बनो।

निष्ठा रखो, किन्तु जिद्दी मत बनो।

साधु न सजो, साधु होने की चेष्टा करो।

किसी महापुरुष के साथ तुम अपनी तुलना न करो; किन्तु सर्वदा उनका अनुसरण करो।

यदि प्रेम रहे तब पराये को ''अपना'' कहो, किन्तु स्वार्थ न रखो।

प्रेम की बात बोलने से पहले प्रेम करो।

अन्धा होना दुर्भाग्य की बात है ठीक ही, किन्तु यष्टि-च्युत (लाठी खोना) होना और भी दुर्भाग्य है; कारण यष्टि ही आँखों का बहुत-सा काम करती है।

स्कूल जाने से ही किसी को छात्र नहीं कहते, और मंत्र लेने से ही किसी को शिष्य नहीं कहते, हृदय को शिक्षक या गुरु के आदेश पालन के लिए सर्वदा उन्मुक्त रखना चाहिए। अन्तर में स्थिर विश्वास चाहिये। वे जो भी बोल देंगे वही करना होगा, बिना आपत्ति के, बिना हिचकिचाहट के, बल्कि परम आनन्द से।

जिस छात्र या शिष्य ने प्राणपण से आनन्द सहित गुरु का आदेश पालन किया है वह कभी भी विफल

नहीं हुआ।

शिष्य का कर्तव्य है प्राणपण से गुरु के आदेश को कार्य में परिणत करना, गुरु को लक्ष्य करके चलना।

जभी देखोगे, गुरु के आदेश से शिष्य को आनन्द हुआ है, मुख प्रफुल्लित हो उठा है, तभी समझोगे कि उसके हृदय में शक्ति आयी है!

खबरदार, किसी को हुक्म देकर अथवा नौकर-चाकर द्वारा गुरु की सेवा-सुश्रूषा कराने न जाना-प्रसाद से वंचित मत होना।

माँ अपने हाथों से बच्चों का यत्न करती है, इसीलिये वहाँ पर अश्रद्धा नहीं आती-इसीसे तो इतना प्यार है!

अपने हाथों से गुरुसेवा करने से अहंकार पतला होता है, अभिमान दूर होता है और प्रेम आता है।

गुरु ही हैं भगवान की साकार मूर्ति, और वे ही हैं Absolute (अखण्ड)।

गुरु को अपना समझना चाहिये- माँ, बाप, पुत्र इत्यादि घर के लोगों का ख्याल करते समय जिसमें उनका चेहरा भी याद आये।

उनकी भर्त्सना का भय करने की अपेक्षा प्रेम का भय करना अच्छा है; मैं यदि अन्याय करूँ तो उनके प्राण में व्यथा लगेगी।

सब समय उन्हें अनुसरण करने की चेष्टा करो; वे जो कहें यत्न के साथ उनका पालन कर अभ्यास में चरित्रगत करने की नियत चेष्टा करो; और वही साधना है।

तुम गुरु या सत् में चित्त संलग्न करके आत्मोन्नयन में यत्नवान होओ, दूसरे तुम्हारे विषय में क्या बोलते हैं-देखने जाकर आकृष्ट न हो पड़ो- ऐसा करने से आसक्त हो पड़ोगे, आत्मोन्नयन नहीं होगा।

स्वार्थबुद्धि बहुधा आदर्श पर दोषारोपण करती है, सन्देह ला देती है, अविश्वास ला देती है। स्वार्थबुद्धिवश आदर्श में दोष मत देखो, सन्देह न करो, अविश्वास न करो- करने से आत्मोन्नयन नहीं होगा।

मुक्तस्वार्थ होकर आदर्श में दोष देखने पर उसका अनुसरण मत करो- करने से आत्मोन्नयन नहीं होगा!

आदर्श के दोष हैं- मूढ़ अहंकार, स्वार्थ चिन्ता, अप्रेम। अनुसरणकारी के दोष हैं- सन्देह, अविश्वास, स्वार्थबुद्धि।

जो प्रेम के अधिकारी हैं, निःसन्देह चित्त से उनका ही अनुसरण करो, मंगल के अधिकारी होगे ही।

जो छल-बल-कौशल से चाहे जैसे भी क्यों न हो, सर्वभूतों की मंगल चेष्टा में यत्नवान हैं, उनका ही अनुसरण करो, मंगल के अधिकारी होगे ही।

जो किसी भी प्रकार से किसी को भी दुःख नहीं देते, पर असत् को भी प्रश्रय नहीं देते, उनका ही अनुसरण करो, मंगल के अधिकारी होगे ही।

जिन्हें तुमने चालकरूप में मनोनीत कर लिया है, उनसे अपने हृदय की कोई बात गोपन न करो। गोपन करना उन पर अविश्वास करना है, और अविश्वास में ही है अधःपतन। चालक अन्तर्यामी हैं, यदि ठीक-ठीक विश्वास हो तो तुम कुकार्य कर ही नहीं सकोगे। और यदि कर भी लोगे तो निश्चय ही स्वीकार करोगे। और गोपन करने की इच्छा होते ही समझो, तुम्हारे हृदय में दुर्बलता आयी है एवं अविश्वास ने तुम पर आक्रमण किया है- सावधान होओ! नहीं तो बहुत दूर चले जाओगे।

तुम यदि गोपन करते हो, तुम्हारे सत्चालक भी छिपे रहेंगे और तुम अपने हृदय का भाव व्यक्त करो, उन्मुक्त बनो, वे भी तुम्हारे सम्मुख उन्मुक्त होंगे, यह निश्चित है।

गोपन करने के अभिप्राय से चालक को 'अन्तर्यामी हो, सब कुछ ही जान रहे हो', यह कह कर चालाकी करने से स्वयं पतित होगे, दुर्दशायें धर दबायेंगी।

हृदय-विनिमय प्रेम का लक्षण है; और तुम यदि उसी हृदय को गोपन करते हो तो यह निश्चित है कि तुम स्वार्थभावापन्न हो, उनको केवल बातों से प्रेम करते हो।

काम में गोपनता है, किन्तु प्रेम में तो दोनों के अन्दर कुछ भी गोपन नहीं रह सकता।

सत्-चालक क्षीण अहंयुक्त होते हैं; वे स्वयं अपनी क्षमता को तुम्हारे सम्मुख किसी भी तरह जाहिर न करेंगे, बल्कि इसीलिये तुम्हारे भावानुयायी तुम्हारे अनुसरण करेंगे- और यही है सत्-चालक का स्वभाव। यदि सत्-चालक अवलम्बन किये रहो, जो भी करो, भय नहीं, मरोगे नहीं, किन्तु कष्ट के लिए राजी रहो।

दीन होने का अर्थ गन्दा बने रहना नहीं है।

व्याकुलता का अर्थ विज्ञापन नहीं बल्कि हृदय की एकान्त उद्दाम आकांक्षा है।

स्वार्थपरता स्वाधीनता नहीं, वरन् स्वाधीनता का अन्तराय (बाधक) है।

तुम जितने लोगों की सेवा करोगे उतने लोगों के यथासर्वस्व के अधीश्वर बनोगे।

तेज का अर्थ क्रोध नहीं, वरन् विनय समन्वित दृढ़ता है।

साधु का अर्थ जादूगर नहीं, वरन त्यागी, प्रेमी है।

भक्त का अर्थ क्या अहमक (बेवकूफ) है? वरन् विनीत अहंयुक्त ज्ञानी है।

सहिष्णुता का अर्थ पलायन नहीं, है प्रेम सहित आलिंगन।

क्षमा करो, किन्तु हृदय से; भीतर गरम होकर अपारगतावशतः क्षमाशील होने मत जाओ।

विचार का भार, दण्ड का भार अपने हाथ में लेने मत जाओ; अन्तर सहित परमपिता पर न्यस्त करो, भला होगा।

किसी को भी अन्याय के लिये यदि तुम दंड देते हो, निश्चित जानो-परमपिता उस दंड को तुम दोनों के बीच तारतम्यानुसार बाँट देंगे।

पिता के लिये, सत्य के लिये दुःख भोग करो; अनन्त शान्ति पाओगे।

तुम सत्य में अवस्थान करो; अन्याय को सहन करने की चेष्टा करो, प्रतिशोध न करो, शीघ्र की परममंगल के अधिकारी होओगे।

यदि पाप किये हो, तो कातर कण्ठ से उसे प्रकाश करो, शीघ्र की सांत्वना पाओगे।

सावधान! संकीर्णता या पाप को गोपन न रखो; उत्तरोत्तर वर्द्धित होकर अतिशीघ्र तुम्हें अधःपतन के चरम में ले जायगा।

अन्तर में जिसे गोपन करोगे वही वृद्धि पायेगा।

दान करो, किन्तु दीन होकर, बिना प्रत्याशा के। तुम्हारे अन्तर में दया के द्वार खुल जाये।

दया के हिसाब से किया गया दान अहंकार का ही परिपोषक होता है।

जो कातरभाव से तुम्हारा दान ग्रहण करते हैं, गुरुरूप में वे तुम्हारे हृदय में दयाभाव का उद्बोधन करते हैं; अतएव कृतज्ञ होओ!

जिसे दान दोगे, उसका दुःख अनुभव कर सहानुभूति प्रकाश करो, साहस दो, सांत्वना दो; बाद में साध्यानुसार यत्न के साथ दो; प्रेम के अधिकारी होओगे- दान सिद्ध होगा।

दान करके प्रकाश जितना न करो उतना ही अच्छा- अहंकार से बचोगे।

याचक को लौटाओ नहीं। अर्थ, नहीं तो सहानुभूति, साहस, सांत्वना, मधुर बात, जो भी एक, दो-हृदय कोमल होगा।

दूसरे की मंगल-कामना ही अपने मंगल की प्रसूति है।

पड़े-पड़े मरने से चलकर मरना अच्छा है।

जो बोलने में कम, काम में अधिक है, वही है प्रथम श्रेणी का कर्मी; जो जैसा बोलता है, वैसा ही करता है, वह है मध्यम श्रेणी का कर्मी; जो बोलता अधिक है, करता कम है, वह है तृतीय श्रेणी का कर्मी; और जिसे बोलने में भी आलस्य, करने में भी आलस्य, वही है अधम।

दौड़कर जाओ, किन्तु हाँफ न जाना; और ठोकर खाकर जिसमें गिर न पड़ो, दृष्टि रखो।

जिस काम में तुम्हें विरक्ति और क्रोध आ रहे हैं, निश्चय जानो वह व्यर्थ होने को है।

कार्यसाधन के समय उससे जो विपदा आयेगी, उसके लिये राजी रहो; विरक्त या अधीर न होना, सफलता तुम्हारी दासी होगी।

चेष्टा करो, दुःख न करो, कातर मत होओ, सफलता आयेगी ही।

कार्यकुशल का चिन्ह दुःख का प्रलाप नहीं।

उत्तेजित मस्तिष्क और वृथा आडम्बरयुक्त चिन्ता-दोनों ही असिद्धि के लक्षण हैं।

विपदा को धोखा देकर और परास्त कर सफलता-लक्ष्मी लाभ करो; विपदा जिसमें तुम्हें सफलता से

वंचित न करे।

सुख अथवा दुःख यदि तुम्हारा गतिरोध नहीं करे तब तुम निश्चय गन्तव्य पर पहुँचोगे, सन्देह नहीं।

धनी बनो क्षति नहीं, किन्तु दीन एवं दाता बनो।

धनवान यदि अहंकारी होता है, वह दुर्दशा में अवनत होता है।

दीनताहीन अहंकारी धनी प्रायः अविश्वासी होता है, और उसके हृदय में स्वर्ग का द्वार नहीं खुलता।

अहंकारी धनी मलिनता का दास होता है, इसीलिये ज्ञान की उपेक्षा करता है।

क्षमा करो, किन्तु क्षति मत करो।

प्रेम करो, किन्तु आसक्त मत होओ।

खूब प्रेम करो, किन्तु घुलमिल मत जाओ।

बक-बक करना पूर्णत्व का चिन्ह नहीं।

यदि स्वयं सन्तुष्ट या निर्भावना हुए हो तो दूसरे के लिए चेष्टा करो।

जिस परिमाण में दुःख के कारण से मन संलग्न होकर अभिभूत होगा, उसी परिमाण में हृदय में भय आयेगा एवं दुर्बलताग्रस्त हो जाओगे।

यदि रक्षा पाना चाहते, भय एवं दुर्बलता नाम की कोई चीज मत रखो; सत्‌चिन्ता एवं सत्‌कर्म में डूबे रहो।

असत् में आसक्ति से भय, शोक एवं दुःख आते हैं। असत् का परिहार करो, सत् में आस्थावान बनो, त्राण पाओगे।

सत्-चिन्ता में निमज्जित रहो, सत्‌कार्य तुम्हारा सहाय होगा एवं तुम्हारा चतुर्दिक सत् होकर सब समय तुम्हारी रक्षा करेगा ही।

धर्म को जानने का अर्थ है विषय के मूल कारण को जानना और वही जानना ज्ञान है।

उस मूल के प्रति अनुरक्ति ही है भक्ति; और भक्ति के तारतम्यानुसार ही ज्ञान का भी तारतम्य होता है। जितनी अनुरक्ति से जितना जाना जाता है, भक्ति और ज्ञान भी उतना ही होता है।

तुम विषय में जितना आसक्त होते हो, विषय सम्बन्ध में तुम्हारा ज्ञान भी उतना ही होता है।

जीवन का उद्देश्य है अभाव को एकदम भगा देना और वह केवल कारण को जानने से ही हो सकता है।

अभाव से परिश्रान्त मन ही धर्म या ब्रह्मजिज्ञासा करता है, अन्यथा नहीं करता।

किससे अभाव मिटेगा और किस प्रकार, ऐसी चिन्ता से ही अन्त में ब्रह्मजिज्ञासा आती है।

सत्यानुसरण

जिस पर विषय का अस्तित्व है वही है धर्म; जब तक उसे नहीं जाना जाता तब तक विषय की ठीक-ठीक जानकारी नहीं होती।

जो भाव विरुद्ध भाव द्वारा आहत या अभिभूत नहीं होता, वही है विश्वास।

विश्वास नहीं रहने पर दर्शन कैसे होगा?

कर्म विश्वास का अनुसरण करता है, जैसा विश्वास, कर्म भी वैसा ही होता है।

गंभीर विश्वास से सब हो सकता है। विश्वास करो - सावधान! अहंकार, अधैर्य और विरक्ति जिसमें न आये- जो चाहते हो वही होगा!

विश्वास ही विस्तार और चैतन्य ला दे सकता है और अविश्वास जड़त्व, अवसाद, संकीर्णता ले आता है।

विश्वास युक्ति-तर्क के परे है; यदि विश्वास करो, जितने युक्ति-तर्क हैं तुम्हारा समर्थन करेंगे ही।

तुम जिस तरह विश्वास करोगे, युक्ति-तर्क तुम्हारा उसी तरह समर्थन करेंगे।

भाव में ही है विश्वास की प्रतिष्ठा। युक्ति-तर्क विश्वास नहीं ला सकता। भाव जितना पतला, विश्वास उतना पतला, निष्ठा भी उतनी कम।

विश्वास है बुद्धि की सीमा के बाहर; विश्वास-अनुयायी बुद्धि होती है। बुद्धि में हाँ-ना है, संशय है; विश्वास में हाँ-ना नहीं, संशय भी नहीं।

जिसका विश्वास जितना कम है वह उतना undeveloped (अविकसित) है, बुद्धि उतनी कम तीक्ष्ण है।

तुम पण्डित हो सकते हो, किन्तु यदि अविश्वासी होओ, तब तुम निश्चय ग्रामोफोन के रेकार्ड अथवा भाषावाही बैल की तरह हो।

जिसका विश्वास पक्का नहीं उसे अनुभूति नहीं; और जिसे अनुभूति नहीं, वह फिर पण्डित कैसा?

जिसकी अनुभूति जितनी है, उसका दर्शन, ज्ञान भी उतना है और ज्ञान में ही है विश्वास की दृढ़ता।

यदि विश्वास न करो, तुम देख भी नहीं सकते, अनुभव भी नहीं कर सकते। और वैसा देखना एवं अनुभव करना विश्वास को ही पक्का कर देता है।

जैसे आदर्श में तुम विश्वास स्थापन करोगे, तुम्हारा स्वभाव भी उसी तरह गठित होगा और तुम्हारा दर्शन भी तद्रूप होगा।

विश्वासी को अनुसरण करो, प्रेम करो, तुम में भी विश्वास आयेगा।

मुझे विश्वास नहीं है -इस भाव के अनुसरण से मनुष्य विश्वासहीन हो जाता है।

सत्यानुसरण

विश्वास नहीं हो, ऐसा मनुष्य नहीं। जिनका विश्वास जितना गहरा है, जितना उच्च है, उसका मन उतना उच्च है, जीवन उतना ही गहरा है।

जो सत् में विश्वासी है वह सत् होगा ही और असत् में विश्वासी असत् हो जाता है।

विश्वास विरुद्ध भाव द्वारा आक्रान्त होने पर सन्देह आता है।

विश्वास सन्देह द्वारा अभिभूत होने पर मन जब उसे ही समर्थन करता है तभी अवसाद आता है।

प्रतिकूल युक्ति त्याग कर विश्वास के अनुकूल युक्ति के श्रवण एवं मनन से सन्देह दूरीभूत होता है, अवसाद नहीं रहता।

विश्वास पक जाने पर कोई भी विरुद्ध भाव उसे हिला नहीं सकता।

प्रकृत विश्वासी को सन्देह ही क्या करेगा या अवसाद ही क्या करेगा।

सन्देह को प्रश्रय देने से वह घूण की तरह मन पर आक्रमण करता है, अन्त में अविश्वासरूपी जीर्णता की चरम मलिन दशा को प्राप्त होता है।

सन्देह का निराकरण कर विश्वास की स्थापना करना ही है ज्ञानप्राप्ति।

तुम यदि पक्के विश्वासी होओ, विश्वास अनुयायी भाव के सिवाय जगत् का कोई विरूद्ध भाव, कोई मन्त्र, कोई शक्ति तुम्हें अभिभूत या जादू नहीं कर सकेगी, निश्चय जानो।

तुम्हारे मन से जिस परिमाण में विश्वास हटेगा, जगत तुम पर उसी परिमाण में सन्देह करेगा या अविश्वास करेगा एवं दुर्दशा भी तुम पर उसी परिमाण में आक्रमण करेगी, यह निश्चित है।

अविश्वास क्षेत्र दुर्दशा या दुर्गति का राजत्व है।

विश्वास-क्षेत्र बड़ा ही उर्वर है। सावधान, अविश्वासरूपी जंगल-झाड़ के सन्देहरूपी अंकुर निकलते देखते ही तत्क्षण उसे उखाड़ फेंको, नहीं तो भक्तिरूपी अमृत-वृक्ष बढ़ नहीं सकेगा।

श्रद्धा और विश्वास दोनो भाई हैं, एक के आते ही दूसरा भी आता है।

सन्देह का निराकरण करो, विश्वास के सिंहासन पर भक्ति को बैठाओ, हृदय में धर्मराज्य संस्थापित हो।

सत् में निरवच्छिन्न संलग्न रहने की चेष्टा को ही भक्ति कहते हैं।

भक्त ही प्रकृत ज्ञानी है, भक्तिविहीन ज्ञान वाचकज्ञान मात्र है।

तुम सोऽहं ही बोलो और ब्रह्मास्मि ही बोलो, किन्तु भक्ति अवलम्बन करो, तभी वह भाव तुम्हें अवलम्बन करेगा; नही तो किसी भी तरह कुछ नहीं होगा।

विश्वास जैसा है, भक्ति उसी तरह आयेगी एवं ज्ञान भी होगा तदनुयायी।

पहले निरहंकार होने की चेष्टा करो; बाद में 'सोऽहं' कहो, नहीं तो 'सोऽहं' तुम्हें और भी अधःपतन में ले जा सकता है।

तुम यदि सत्‌चिंता में संयुक्त रहने की चेष्टा करो, तुम्हारी चिन्ता, आचार, व्यवहार इत्यादि उदार एवं

सत्य होते रहेंगे और वे सब भक्त के लक्षण हैं।

संकीर्णता के निकट जाने से मन संकीर्ण हो जाता है एवं विस्तृति के निकट जाने से मन विस्तृति लाभ करता है; उसी प्रकार भक्त के निकट जाने से मन उदार होता है और जितनी उदारता है उतनी ही शान्ति।

विषय में मन संलग्न रहने को आसक्ति कहते हैं और सत् में संलग्न रहने को भक्ति कहते हैं।

प्रेम भक्ति की ही क्रमोन्नति है। भक्ति का गाढ़त्व ही प्रेम है। अहंकार जहाँ जितना पतला है भक्ति का स्थान भी वहाँ उतना ही अधिक है।

भक्ति बिना साधना में सफल होने का उपाय कहाँ है? भक्ति ही सिद्धि ला दे सकती है।

विश्वास जिस तरह अन्धा नहीं होता, भक्ति भी उसी तरह मूढ़ नहीं होती।

भक्ति में किसी भी समय किसी तरह की दुर्बलता नहीं।

क्लीवत्व, दुर्बलता बहुधा भक्ति का वेश पहन कर खड़े होते हैं, उनसे सावधान रहना।

थोड़ा रो लेने से ही या नृत्य-गीतादि में उत्तेजित होकर उछल-कूद करने से ही जो भक्ति हुई, ऐसी बात नही है; सामयिक भावोन्मत्ततादि भक्त के लक्षण नहीं। भक्त के चरित्र में पतला अहंकार का चिन्ह, विश्वास का चिन्ह, सत्-चिन्ता का चिन्ह, सद्व्यवहार का चिन्ह एवं उदारता इत्यादि के चिन्ह कुछ-न-कुछ रहेंगे ही, नहीं तो भक्ति नहीं आयी।

विश्वास नहीं आने पर निष्ठा नहीं आती और निष्ठा के बिना भक्ति रह नहीं सकती।

दुर्बल भावोन्मत्तता अनेक समय भक्ति जैसी दिखायी पड़ती है, वहाँ निष्ठा नहीं है और भक्ति का चरित्रगत लक्षण भी नहीं है।

जिसके हृदय में भक्ति है वह समझ नहीं पाता कि वह भक्त है और दुर्बल, निष्ठाहीन केवल भाव-प्रवण, मोटा अहंयुक्त हृदय सोचता है-मैं खूब भक्त हूँ।

अश्रु, पुलक, स्वेद, कम्पन होने से ही जो वहाँ भक्ति आयी है, ऐसी बात नहीं, भक्ति के इन सब के साथ अपना स्वधर्म चरित्रगत लक्षण रहेगा ही।

अश्रु, पुलक, स्वेद, कम्पन इत्यादि भाव के लक्षण हैं; वे अनेक प्रकार के हो सकते हैं।

भक्ति के चरित्रगत लक्षणों के साथ यदि उस भाव के वे लक्षण प्रकाश पायें तभी वे सात्विक भाव के लक्षण हैं।

नकली भक्ति मोटा-अहंकार-युक्त होती है, असली भक्ति होती है अहंकार-मुक्त अर्थात् खूब पतला अहंकार-युक्त।

नकली भक्ति-युक्त मनुष्य उपदेश नहीं ले सकता, उपदेष्टा के रूप में उपदेश दे सकता है; इसीलिये कोई उसे उपदेश देता है तो उसके चेहरे पर क्रोध के लक्षण, विरक्ति के लक्षण, संग छोड़ने की चेष्टा इत्यादि लक्षण प्रायः स्पष्ट प्रकाश पाते हैं।

असली भक्ति-युक्त मनुष्य उपदेष्टा का आसन लेने में बिल्कुल ही गैराजी होता है। यदि उपदेश पाता है, उसके चेहरे पर आनन्द के चिन्ह झलकने लगते हैं।

अविश्वासी एवं बहुनैष्ठिक के हृदय में भक्ति आ ही नहीं सकती।

भक्ति एक के लिए बहुत से प्रेम करती है और आसक्ति बहुत के लिए एक से प्रेम करती है।

आसक्ति में स्वार्थ से आत्मतुष्टि होती है और भक्ति में परार्थ से आत्मतुष्टि होती है।

भक्ति की अनुरक्ति सत् में है और आसक्ति का नशा स्वार्थ में, अहं में है।

आसक्ति काम की पत्नी है और भक्ति प्रेम की छोटी बहन है।

अनुभूति द्वारा जो जाना जाय वही ज्ञान है।

जानने को ही वेद कहते है और वेद अखण्ड है।

जो जितना जानता है वह उतना ही भर वेदविद् है।

ज्ञान प्रहेलिका को ध्वंस कर मनुष्य को प्रकृत चक्षु प्रदान करता है।

ज्ञान वस्तु के स्वरूप को निर्देश करता है और वस्तु के जिस भाव को जान लेने पर जानना बाकी नहीं रहता, वही उसका स्वरूप है।

भक्ति चित्त को सत् में सलग्न करने की चेष्टा करती है, और उससे जो उपलब्धि होती है वही है ज्ञान।

अज्ञानता मनुष्य को उद्विग्न करती है, ज्ञान मनुष्य को शान्त करता है। अज्ञानता ही दुःख का कारण है और ज्ञान ही आनन्द है।

तुम जितने ज्ञान के अधिकारी होगे, उतना भर शान्त होगे। तुम्हारा ज्ञान जैसा होगा, स्वच्छन्द रूप से रहने की तुम्हारी क्षमता भी वैसी होगी।

अहंकार जितना घना होता है, अज्ञानता उतनी अधिक होती है; और अहं जितना पतला होता है, ज्ञान उतना उज्जवल होता है।

सन्देह अविश्वास का दूत है और अविश्वास ही है अज्ञानता का आश्रय।

सन्देह आने पर तत्क्षण उसके निराकरण की चेष्टा करो, और सत्-चिन्ता में निमग्न होओ- ज्ञान के अधिकारी होगे, और आनन्द पाओगे।

असत्-चिन्ता से कुज्ञान या अज्ञान अथवा मोह जन्म लेता है, उसका परिहार करो, दुःख से बचोगे।

तुम असत् में जितना ही आसक्त होगे उतना ही स्वार्थबुद्धिसम्पन्न होगे, और उतना ही कुज्ञान या मोह से आच्छन्न हो पड़ोगे; और रोग, शोक, दारिद्रय, मृत्यु इत्यादि यन्त्रणायें तुम पर उतना ही आधिपत्य करेंगी, यह निश्चित है।

अहंकार आसक्ति लाता है; आसक्ति ला देती है स्वार्थबुद्धि, स्वार्थबुद्धि लाती है काम; काम से ही क्रोध की उत्पत्ति होती है; और, क्रोध से ही आती है हिंसा।

भक्ति ला देती है ज्ञान; ज्ञान से होता है सर्वभूतों में आत्मबोध; सर्वभूतों में आत्मबोध होने से ही आती है अहिंसा; और अहिंसा से ही आता है प्रेम। तुम जितना भर इनमें से जिस किसी एक का अधिकारी होगे, उतना ही भर इन सभी के अधिकारी होगे।

अहंकार से ही आसक्ति आती है; आसक्ति से आती है अज्ञानता; और अज्ञानता ही है दुःख।

सन्देह से ही अविश्वास आता है; और, अविश्वास ही है जड़त्व।

आलस्य से ही मूढ़ता आती है; और मूढ़ता ही है अज्ञानता।

बाधाप्राप्त काम ही है क्रोध; और, क्रोध ही है हिंसा का बन्धु।

स्वार्थबुद्धि की आत्मतुष्टि का अभिप्राय ही है लोभ; और, यह लोभ ही है आसक्ति। जो निर्लोभ है वही है अनासक्त।

सरल साधुता की तरह कोई चतुराई नहीं;- जो जैसा भी क्यों न हो, इस फन्दे में पड़ेगा ही। Honesty is the best policy (सरल साधुता ही है चरम कौशल)।

विनय के समान सम्मोहनकारी दूसरा कुछ भी नहीं।

प्रेम के समान आकर्षणकारी ही और क्या है?

विश्वास के समान दूसरी सिद्धि नहीं।

ज्ञान के समान दूसरी दृष्टि नहीं।

आन्तरिक दीनता के समान अहंकार को वश में करने का दूसरा कुछ भी नहीं।

सद्गुरु के आदेश पालन के समान दूसरा मंत्र क्या है?

चलो, आगे बढ़ो, रास्ते को सोचकर की क्लान्त मत हो जाओ, नहीं तो जा नहीं पाओगे।

जो पहले कूद पड़ा है, जिसने पहले पथ दिखाया है, वही नेता है। नहीं तो केवल बातों से क्या नेता बना जा सकता है?

पहले दूसरों के लिए यथासर्वस्व ढ़ालो, दस के लिये जान-प्राण दे दो और किसी का दोष कहकर दोष देखना भूल जाओ, सेवा में आत्महारा होओ, तभी नेता हो, तभी देश के हृदय हो, तभी देश के राजा हो। नहीं तो वे सब केवल बातों से नहीं होते।

यदि नेता बनना चाहते हो तो नेतृत्व का अहंकार त्याग करो, अपना गुणगान छोड़ दो, दूसरे के हित के लिये यथासर्वस्व दाँव पर लगा दो, और, सभी से प्रेम के साथ बोलो; देखोगे हजारों-हजार लोग तुम्हारा अनुसरण करेंगे।

निर्भर करो, और साहस सहित अदम्य उत्साह से काम किये जाओ, लक्ष्य रखो, तुमसे तुम्हारा अपना और दूसरे का किसी प्रकार अमंगल न हो। देखोगे, सौभाग्य-लक्ष्मी तुम्हारे घर में बँधी रहेगी।

कहा गया हैं, ''वीर भोग्या वसुन्धरा!'' वह ठीक है; विश्वास, निर्भरता और आत्मत्याग, ये तीनों ही वीरत्व के लक्षण हैं।

नम-यश आत्मोन्नयन का घोर अन्तराय (बाधक) है।

तुम्हारी थोड़ी उन्नति होने से ही देखोगे किसी ने तुम्हें ठाकुर बना दिया है, कोई महापुरूष कहता है, और फिर कोई शैतान, बदमाश, कोई व्यवसायी इत्यादि भी कहता है; सावधान! तुम इनमें से किसी की ओर नजर मत देना। तुम्हारे लिये ये सभी भूत हैं, नजर देने से ही गर्दन पर चढ़ बैठेंगे, उसे छुड़ाना भी महामुश्किल है। तुम अपने अनुसार काम किये जाओ, चाहे जो हो।

नाम-यश इत्यादि की आशा में अगर तुम्हारा मन भक्त का आचरण करता है, तब तो मन में कपटता छिपी हुई है- तत्क्षण उसे मारकर बाहर निकाल दो। तभी मंगल है, नहीं तो सब नष्ट हो जायेगा।

ठाकुर, अवतार किंवा भगवान इत्यादि होने की साध मन में होते ही तुम निश्चय ही भण्ड बन जाओगे और मुँह से हजार कहने पर भी कार्य के रूप में कुछ भी नहीं कर सकोगे, यदि वैसी इच्छा रहे तो अभी त्यागो, नहीं तो अमंगल निश्चित है।

तुम जिस तरह प्रकृत होगे, प्रकृति तुम्हें उस तरह की उपाधि निश्चय देगी एवं तुम्हारे अन्दर वैसा अधिकार भी देंगी; इसे नित्य प्रत्यक्ष कर रहे हो; तो तुम्हें और क्या चाहिये? प्राणपण से प्रकृत होने की चेष्टा करो। पढ़कर पास किये बिना क्या युनिवर्सिटी किसी को उपाधि देती है?

भूलकर भी अपना प्रचार करने मत जाना या अपना प्रचार करने के लिए किसी से अनुरोध करना- ऐसा करने से सभी तुमसे घृणा करेंगे और तुमसे दूर हट जायेंगे।

तुम यदि किसी सत्य को जानते हो और उसे यदि मंगलप्रद समझते हो, प्राणपण से उसके ही विषय में बोलो एवं सभी से जानने के लिये अनुरोध करो; समझने पर सभी तुम्हारी बात सुनेंगे एवं तुम्हारा अनुसरण करेंगे।

यदि तुमने सत्य देखा है, समझा है, तो तुम्हारे कायमनोवाक्य से वह प्रस्फुटित होगा ही। तुम जब तक उसमें खो नहीं जाते तब तक किसी भी तरह स्थिर नहीं रह सकोगे; सूर्य को क्या अन्धकार ढ़क कर रख सकता है?

तुम्हारे भीतर यदि सत्य नहीं रहे, तब हजार बोलो, हजार ढ़ोंग करो, हजार कायदा ही दिखाओ, तुम्हारे चरित्र से, तुम्हारे मन से, तुम्हारे वाक्य से उसकी ज्योति किसी भी तरह प्रकाशित नहीं होगी; सूर्य यदि नहीं रहे तो बहुत-से-चिराग भी अन्धकार को बिल्कुल दूर नहीं कर सकते।

जो सत्य का प्रचार करने में अपने महत्व का गल्प करता है एवं हर समय अपने को लेकर ही व्यस्त रहता है और नाना प्रकार से कायदा करके अपने को सुन्दर दिखाना चाहता है, जिसके प्रति अंग-संचालन में, झलक-झलक में अहंकार, दीनता में अहंकार है, विश्वास में, ज्ञान में, भक्ति में, निर्भरता में अहंकार

है– वह हजार पण्डित हो, और वह चाहे ज्ञान–भक्ति की जितनी भी बातें क्यों न करे, निश्चय जानो वह भण्ड है; उससे बहुत दूर हट जाओ, उसकी बातें मत सुनो; किसी भी तरह उसके हृदय में सत्य नहीं है, मन में सत्य नहीं रहने से भाव कैसे आयेगा!

प्रचार का अहंकार प्रकृत–प्रचार का अन्तराय (बाधक) है। वही प्रकृत प्रचारक है जो अपने महत्व की बात भूलकर भी जबान पर नहीं लाता, और, शरीर द्वारा सत्य का आचरण करता है, मन से सत्य–चिन्ता में मुग्ध रहता है एवं मुख से मन के भावानुयायी सत्य के विषय में कहता है।

जहाँ देखोगे, कोई विश्वास के गर्व के साथ सत्य के विषय में कहता है, दया की बातें बोलते–बोलते आनन्द एवं दीनता से अधीर हो पड़ता है, प्रेम सहित आवेगपूर्ण होकर सभी को पुकारता है, आलिंगन करता है और जिस मुहूर्त में उसके महत्व की बात कोई कहता है, उसे स्वीकार नहीं करता, वरन् दीन एवं म्लान होकर भग्न–हृदय की तरह हो जाता है– यह बिल्कुल सही है कि उसके पास उज्जवल सत्य निश्चय ही है, और, उसके साधारण चरित्र में भी देखोगे, सत्य प्रस्फुटित हो रहा है।

तुम भक्तिरूपी तेल में ज्ञानरूपी बत्ती भींगोकर सत्यरूपी चिराग जलाओ, देखोगे कितने फतिंगे, कितने कीड़े, कितने जानवर, कितने मनुष्यों ने तुम्हें किस प्रकार घेर लिया है।

जो सत् की ही चिन्ता करता है, सत् का ही याजन करता है, जो सत् का ही भक्त है, वही है प्रकृत प्रचारक।

आदर्श में गहरा विश्वास नहीं रहने पर निष्ठा भी नहीं आती, भक्ति भी नहीं आती; और, भक्ति नहीं होने से अनुभूति ही क्या होगी, ज्ञान ही क्या होगा, और वह प्रचार ही क्या करेगा?

प्रकृत सत्य प्रचारक का अहंकार अपने आदर्श में रहता है और भण्ड प्रचारक का अहंकार आत्म–प्रचार में।

जिसे मंगल समझोगे, जिसे सत्य समझोगे, मनुष्य से उसे कहने के लिए हृदय व्याकुल हो उठेगा, मनुष्य चाहे तुम्हे जो भी क्यों न कहें, मन पर कुछ भी असर नहीं पड़ेगा, किन्तु मनुष्य को सत्यमुखी देखकर आनन्द होगा–तभी उसे प्रचार कहा जायगा।

ठीक–ठीक विश्वास, निर्भरता एवं भक्ति नहीं रहने पर कोई कभी भी प्रचारक नहीं हो सकता।

जो अपना प्रचार करता है वह आत्म–प्रवंचना करता है, और, जो सत्य या आदर्श में मुग्ध होकर उसके विषय में कहता है, वही किन्तु ठीक–ठीक आत्म–प्रचार करता है।

प्रकृत सत्य प्रचारक ही जगत् के प्रकृत मंगलाकांक्षी हैं। उनकी दया से कितने जीवों का जो आत्मोन्नयन होता है उसकी इयत्ता नहीं।

तुम सत्य या आदर्श में मुग्ध रहो, हृदय में भाव स्वयं ही उबल पड़ेगा और उसी भाव में अनुप्राणित होकर कितने लोगों की जो उन्नति होगी उसकी कोई सीमा नहीं।

गुरु होना मत चाहो। गुरुमुख होने की चेष्टा करो; गुरुमुख ही होते हैं जीव के प्रकृत उद्धारकर्ता।

देह रहते अहंकार नहीं जाता, और भाव रहते अहं नहीं जाता। तब अपने अहं को आदर्श पर छोड़ कर, Passive होकर जो जितना रह सकता है वह उतना है निरहंकार एवं वह उतना उदार है।

सत्यानुसरण

अपने पर गर्व जितना न किया जाय उतना ही मंगल, और आदर्श पर गर्व जितना किया जाय उतना ही मंगल।

परमपिता ही तुम्हारे अहंकार के विषय हों, और तुम उनमें ही आनन्द उपभोग करो!

असत् आदर्श में अपना अहंकार न्यस्त न करो; अन्यथा तुम्हारा अहंकार और भी कठिन होगा।

आदर्श जितना उच्च या उदार हो उतना ही अच्छा है, कारण, जितनी उच्चता या उदारता का आश्रय लोगे, तुम भी उतना ही उच्च या उदार बनोगे।

जभी देखो, मनुष्य तुम्हें प्रणाम करते हैं और उससे तुम्हें कोई विशेष आपत्ति नहीं होती, मौखिक रूप से एक-आध बार आपत्ति कर लेते हो ठीक ही- मन में किन्तु ऐसा विशेष कुछ भाव नहीं होता- तभी ठीक समझो, अन्तर में चोर के समान 'हमबड़ाई' प्रवेश कर गयी है; जितना शीघ्र हो, तुम सावधान हो जाओ, अन्यथा निश्चय ही अधःपतन में जाओगे।

जैसे ही किसी के प्रणाम करते ही साथ-साथ स्वयं दीनता से तुम्हारा सिर झुक जाता है, सेवा लेने के लिए मन एकदम राजी नहीं है, वरन् सेवा करने के लिए मन सब समय व्यस्त रहता है, -आदर्श की बात कहते ही प्राण में आनन्द होता है- तुम्हें भय नहीं, तुम मंगल की गोद में हो; एवं नित्य और भी अधिक ऐसे ही रहने की चेष्टा करो।

तुम लता का स्वभाव अवलम्बन करो, और, आदर्शरूपी वृक्ष को लिपट कर धरो- सिद्धकाम होगे।

यदि तुम्हें आदर्श की बात बोलने में आनन्द, सुनने में आनन्द; उनकी चिन्ता करने में आनन्द, उनका हुक्म पाने पर आनन्द, उनके आदर में आनन्द, अनादर में भी आनन्द हो, उनके नाम से हृदय उछल पड़े- मैं निश्चय कहता हूँ, अपने उन्नयन के लिये तुम और नहीं सोचो।

सद्गुरु के शरणापन्न होओ, सत्नाम मनन करो, और, सत्संग का आश्रय ग्रहण करो- मैं निश्यय कहता हूँ, तुम्हें अपने उन्नयन के लिये सोचना नहीं पड़ेगा!

तुम भक्तिरूपी जल को त्याग कर आसक्तिरूपी बालू की रेत में बहुत दूर मत जाओ, दुःखरूपी सूर्योत्ताप से बालू की रेत गर्म हो जाने पर लौटना मुश्किल होगा; थोड़ा उत्तप्त होते-होते अगर लौट नहीं सके, तो सूखकर मरना होगा।

भावमुखी रहने की चेष्टा करो, पतित नहीं होगे वरन् अग्रसर होते रहोगे।

गुरुमुखी होने की चेष्टा करो, मन का अनुसरण नहीं करो- उन्नति तुम्हें किसी भी तरह त्याग नहीं करेगी।

विवेक का अवलम्बन करो, और मन का अनुसरण नहीं करो-उदारता तुम्हें कभी भी त्याग नहीं करेगी।

सत्य का आश्रय लो, और असत्य का अनुगमन नहीं करो- शान्ति तुम्हें किसी भी तरह छोड़कर नहीं रहेगी।

दीनता को अन्तर में स्थान दो- अहंकार तुम्हारा कुछ भी नहीं कर सकेगा।

जिसे त्याग करना हो उसकी ओर आकृष्ट या आसक्त न होना- दुःख से बचोगे।

प्रेम की प्रार्थना करो, और हिंसा को दूर से परिहार करो, जगत् तुम्हारी ओर आकृष्ट होगी ही।

तुम्हें मन का सन्यास हो; सन्यासी का वेष बनाकर झूठमूठ बहुरूपिया मत बन बैठो।

तुम्हारा मन सत् या ब्रह्म में विचरण करे, किन्तु शरीर को गेरूआ या रंग टंग से सजाने में व्यस्त मत होओ, ऐसा करने से मन शरीरमुखी हो जायगा।

अहंकार त्याग करो, सत्स्वरूप में अवस्थान कर पाओगे।

पतित को उद्धार की बात सुनाओ, आशा दो, छल-बल-कौशल से उसके उन्नयन में सहायता करो, साहस दो-किन्तु उच्छृखंल होने मत दो।

यदि किसी दिन अपने प्रेमास्पाद को सर्वस्व न्योछावर कर निमज्जित हुए हो-और उतरा आने की आशंका देखते हो, तो जोर करके तत्क्षण निमज्जित होकर विगतप्राण हो जाओ-देखोगे-प्रेमास्पद कितने सुन्दर हैं, किस प्रकार तुम्हें आलिंगन किये हुए हैं।

यदि थोड़ी-सी लोकनिन्दा, उपहास, स्वजनानुरक्ति, स्वार्थहानि, अनादर, आत्म या परगंजना तुम्हें अपने प्रेमास्पद से दूर रख सके तो तुम्हारा प्रेम कितना क्षीण है-क्या ऐसी बात नहीं?

किसी चीज को ''आज समझ गया हूँ फिर कल समझ में नही आती-पहेली'' इत्यादि कहकर शृगाल मत बनो- कारण, इतर जन्तु भी जिसे समझ लेते हैं उसे भूलते नहीं। इसीलिये, ऐसा बोलना ही दुष्ट या अस्थिर-बुद्धि का परिचायक है।

आज उपकृत हुआ हूँ इसलिये कल फिर स्वार्थन्ध होकर अपकृत होने का बहाना कर अकृतज्ञता को मत बुला लो। इससे बढ़कर इतरता और क्या है? जिस किसी से पूछ लो।

मूर्खता नहीं रहने से उपकृत की कुत्सा से उपकारी को निन्दित नहीं किया जाता।

उपकारी जब उपकृत द्वारा विध्वस्त होता है तब मूढ़ अहं कृतज्ञतारूपी अर्गला को तोड़कर दम्भकण्टकाकीर्ण मृत्यु-पथ को उन्मुक्त करता है।

आश्रित की निन्दा से जो आश्रय को कुत्सित विवेचना करते हैं-विश्वासघातकता उनका पीछा करती है।

प्रिय के प्रति प्रेम या मंगलविहिन कर्म कभी भी प्रेम का परिचायक नहीं।

प्रियतम के लिए कुछ करने की इच्छा नहीं होती-अथच खूब प्रेम करता हूँ- यह बात जैसी है, सोने की पीतल से बने पण्डूक की बात भी वैसी है। स्वार्थबुद्धि ही प्रायः वैसा प्रेम करती है, इसीलिये-वैसे निष्काम धर्माक्रान्त प्रेम को देखकर सावधान होना अच्छा है, नहीं तो विपदा की सम्भावना ही अधिक है।

प्रेम करते हो- अपिच तुम्हारे ऊपर उसके जोर या आधिपत्य, शासन, अपमान, अभिमान अथवा जिद करने से ही तुम्हें सुख के बजाय उल्टा होता है या खत्म हो जाता है- मैं कहता हूँ- तुम निश्चय ठगाओगे एवं ठगोगे, जितने दिन इस तरह रहोगे, -इसीलिये अभी भी सावधान होओ।

प्रेम का मोह-बाधा पाते ही वृद्धि, प्रेमास्पद के अत्याचार में भी घृणा नहीं आती, विच्छेद में सतेज होता है, मनुष्य को मूढ़ नहीं बनाता, चिर दिन अतृप्ति रहती है, एक बार स्पर्श कर लेने पर त्यागा नहीं जाता-अपरिवर्तनीय है।

काम का मोह-बाधा में क्षीण, काम के अत्याचार से या जैसा चाहता है वैसा नहीं पाने पर घृणा, विच्छेद

में भूल, मनुष्य को कापुरूष एवं मूढ़ बना देता है, भोग में ही है तृप्ति एवं विषाद, चिर दिन नहीं रहता–परिवर्तनीय है।

गरीयान होओ किन्तु गर्वित मत बनो।

यदि मुग्ध करना चाहते हो तो स्वयं संपूर्ण भाव से मुग्ध होओ।

यदि सुन्दर होने की इच्छा हो तो कुरूप में भी सुन्दर देखो।

एकानुरक्ति, तीव्रता एवं क्रमागति में ही जीवन का सौंदर्य एवं सार्थकता है।

बहुतों के प्रति प्रीति जो एक के प्रति प्रीति को हिला या विच्छिन्न नहीं कर सकती, वही प्रीति है प्रेम की भगिनी।

भले–बुरे का विचार कर विध्वस्त होने के बजाय सत् में (गुरु में) आकृष्ट होओ–निर्विघ्न रूप से सफल होगे निश्चय।

दुर्बलता के समय सुन्दर एवं सबलता की चिन्ता करो, और अहंकार में प्रिय एवं दीनता की चिन्ता करो–मानसिक स्वास्थ्य अक्षुण्ण रहेगा।

दोष देखकर दुष्ट मत बनो, और तुम में संलग्न सभी का दुष्ट मत बना दो।

उन्हें दो–माँगो नहीं–पाने पर आनन्दित होओ।

तुम उनके इच्छाधीन होओ, उन्हें अपने इच्छाधीन करने की चेष्टा न करो– कारण, तुम्हारे लिये वे ही सुन्दर हैं।

मिलन की आकुलता को किसी भी तरह न त्यागो, अन्यथा विरह की व्यथा मधुर नहीं होगी– और, दुःख में शान्ति अनुभव नहीं कर पाओगे।

जिसके लिये तुम्हारा सोचना, करना एवं बोध जितना एवं जिस प्रकार है, उसके प्रति तुम्हारी आसक्ति, खिंचाव या प्रेम उतना ही और उसी प्रकार है।

जिनके लिये सर्वस्व न्योछावर कर दिये हो– वे ही तुम्हारे भगवान हैं, और वे ही हैं तुम्हारे परम गुरु।

जैसा करने से जिसकी प्राप्ति होती है, वैसा नहीं करते हो तो उसके लिये दुःखित मत होओ।

करने से पहले दुःख करना अप्राप्ति को ही बुलाता है।

पाने के लिये– वह जो भी हो, सुनना होगा कि वह कैसे पाया जाता है– और ठीक–ठीक उसे करना होगा– बिना किये पाने के लिये उदग्रीव होने से बढ़कर बेवकूफी और क्या है?

निश्चय जानो– करना ही है पाने की जननी।

करनी जब चाह का अनुसरण करती है– तभी उसकी कृतार्थता सम्मुख उपस्थित होती है।

मनुष्य का आकांक्षित मंगल उसके अभ्यस्त संस्कार के अन्तराल में रहता है, और मंगलदाता तभी दण्डित होते हैं जभी प्रदत्त मंगल का अभ्यस्त संस्कार के साथ विरोध उपस्थित होता है– और इसीलिये प्रेरित–पुरूष स्वदेश में कुत्सामण्डित होते हैं।

प्रकृति उन्हें धिक्कारती है, जो कि प्रत्यक्ष की अवज्ञा या अग्राह्य कर परोक्ष का आलिंगन करते हैं।

और, परोक्ष जिनके प्रत्यक्ष को रंजित वा लांछित करता है वे ही धोखे के अधिकारी होते हैं।

जो वृद्धिप्राप्त होकर, सब कुछ होकर वही है- वही है ब्रह्म।

जगत् के समस्त ऐश्वर्य-ज्ञान, प्रेम एवं कर्म- जिनके अन्दर सहज उत्सारित हैं, और जिनके प्रति आसक्ति से मनुष्य का विच्छिन्न जीवन एवं जगत् के समस्त विरोधों का चरम समाधान लाभ होता है- वे ही हैं मनुष्य के भगवान।

भगवान को जानने का अर्थ ही है समस्त को समझना या जानना।

किसी मूर्त्त आदर्श में जिनकी कर्ममय अटूट आसक्ति ने समय या सीमा को अतिक्रम कर उन्हें सहज भाव से भगवान बना दिया है- जिनके काव्य, दर्शन एवं विज्ञान मन के भले-बुरे विच्छिन्न संस्कारों को भेद कर उस आदर्श में ही सार्थक हो उठे हैं-वे ही हैं सद्‌गुरु।

जिनका मन सत् या एकासक्ति से पूर्ण हैं- वे ही सत् या सती हैं।

आदर्श में मन को सम्यक प्रकार से न्यस्त करने का नाम है -**संन्यास**।

किसी विषय में मन के सम्यक भाव से लगे रहने का नाम है-**समाधि**।

नाम मनुष्य को तीक्ष्ण बनाता है और ध्यान मनुष्य को स्थिर और ग्रहणक्षम बनाता है।

ध्यान का अर्थ ही है किसी एक की चिन्ता में लगे रहना। और, उसे ही हम बोध कर सकते हैं- जो कि हमारे लगे रहने में विक्षेप ले आता है, किन्तु भंग नहीं कर सकता है।

विरक्त होने को अर्थ ही है विक्षिप्त होना।

तीक्ष्ण होओ, किन्तु स्थिर होओ-समस्त अनुभव कर पाओगे!

जिस किसी में युक्त होने या एकमुखी आसक्ति का नाम ही है- योग।

जिस किसी के द्वारा प्रतिहत होने पर जो अपने को प्रतिष्ठित करना चाहता है- वही है अहं (self).

अहं को सख्त करने का अर्थ ही है दूसरे को नहीं जानना।

वस्तु-विषयक सम्यक् दर्शन द्वारा तन्मनन से मन की निवृत्ति जिन्हें हुई है- वे ही हैं ॠषि।

मन के सभी प्रकार की ग्रन्थियों का (संस्कारों का) समाधान या मोचन होकर एक में सार्थक होना ही है-मुक्ति।

जो भाव एवं कर्म मनुष्य को कारणमुखी बना देते है- वे ही हैं आध्यात्मिकता।

जो तुलना अन्तर्निहित कारण को प्रस्फुटित कर देती है- वही है प्रकृत विचार।

किसी वस्तु को लक्ष्य करके उसका स्वरूप निर्देशक विश्लेषण ही है- युक्ति।

कोई काम करके-विचार द्वारा उसके भले-बुरे को अनुभव कर जिस ताप के कारण बुराई से विरति

आती है– वही है अनुताप।

जहाँ गमन करने से मन की ग्रन्थि का मोचन या समाधान होता है– वही है तीर्थ।

जो करने से अस्तित्व की रक्षा होती है– वही है पुण्य।

जिसका अस्तित्व है एवं उसका विकास है– वही है सत्य (Real)।

जो धारणा करने से मन का निजत्व अक्षुण्ण रहता है– वही है ससीम।

जो धारणा करने से मन निजत्व को खो बैठता है– वही है अनन्त या असीम।

शान्ति! शान्ति! शान्ति!

निवेदन

मेरा प्रयास हिन्दी पाठकों के लिए कुछ उत्साहवर्द्धक तथ्यों को प्रस्तुत करना है ताकि वे श्रीश्रीठाकुर अनुकूलचन्द्रजी के दिव्य भावधारा से अनुप्राणित हो सकें।
मेरे इस प्रयास में आपके सुझाव आदरणीय हैं।

--राजीव swastikmail@gmail.com